होम्योपैथिक चिकित्सा की वैज्ञानिकता

सिराज खान[1], बी.के. श्रीवास्तव[2]

1,ज्ञानोदय कॉलेज जैसीनगर सागर म.प्र.2, डॉ. **हरिसिंह गौर विश्वविघालय सागर म.प्र.**

शोध सारांश – होम्योपैथिक चिकित्सा के आरंभ काल में हैनीमैन महोदय ने महसूस किया कि सही होम्योपैथिक दवा दिए जाने के बावजूद, कुछ रोगी कुछ कुछ अंतराल उपरांत वही रोग लक्षण पुनः प्रकट करने लगते हैं। तकरीबन 12 वर्षों की गहरी तहकीकात के उपरांत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चिरकालीन ;बीतवदपबद्ध व्याधियाँ कुछ आधारभूत चिरकालिक विषैले तत्वों ;उपेंउद्ध के कारण होतो हैं। ये हैंः सोरा, सिफलिस और सायकोसिस। सोरा विष असंख्य रोगों का बुनियादी कारण है, लगभग सभी रोगों का जनक। कुछ ही रोग हैं जिनकी तह में अन्य दो विष हैं। अतः रोग का सही उपचार इन विषों के निदान के बिना संभव नहीं।

मुख्य बिंदु– चिकित्सा की वैज्ञानिकता, होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति, होम्योपैथी के मूल सिद्धांत ।

प्रस्तावना

होम्योपैथी के मूल सिद्धांत :

प्रत्येक विज्ञान के कुछ मूलभूत सिद्धांत होते हैं जो उसकी सम्पूर्ण प्रणाली के लिए मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाह करते हैं। रोगोपचार की वह प्रणाली जिसे हम होम्योपैथी कहते हैं, इसका अपना एक दर्शन है जो कुछ निश्चित बुनियादी सिद्धांतों पर आधारित है। ये हैं[1] :

1. सादृश्यता का सिद्धांत 2. स्वाभाविकता का सिद्धांत 3. न्यूनतम् का सिद्धांत प्रमाणन का सिद्धांत 4. चिरकालिक व्याधि का सिद्धांत 5. जीवनी शक्ति का सिद्धांत औषधि 6. शक्तिकरण का सिद्धांत

सादृश्यता का सिद्धांत

होम्योपैथिक चिकित्सा प्रणाली 'सिमिलिया सिमिलिबस क्यूरेण्टरग के सिद्धांत पर आधरित है जिसका अर्थ है 'सादृश्य से सादृश्य का उपचार'। सैमुएल हैनीमैन से पूर्व भी इस सिद्धांत का यहाँ वहाँ जैसे कि हिप्पोक्रेटिस और पॅरासेलसस के लेखन में उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों में, और यहाँ तक कि ऋगवेद में भी ''विष ही विष की औषधि'' के रुप में इसकी स्वीकृति है। हैनीमैन की

ख्याति इसमें है कि उन्होंने इस मत की विश्वव्यापकता को समझा और गुमनामी से उठाकर उसे औषधि–विज्ञान की सम्पूर्ण प्रणाली के रुप में गौरवान्वित किया।

इस प्रणाली में औषधि चुनाव का निर्देशक सिद्धांत यह है कि जो औषधि स्वस्थ व्यक्ति में जिन रोगों के लक्षणों को उत्पन्न करती है, यदि किसी रोगी में वही लक्षण हों तो उसे उसी औषधि से ठीक किया जा सकता है। 'ऑर्गेनन ऑफ़ मेडीसिन' के सूत्र 26 में हैनीमैन ने इस सिद्धांत का उल्लेख किया है।

स्वाभाविकता का सिद्धांत – एकल औषधि

ऑर्गेनन ऑफ़ मेडीसिन के सूत्रों 272–274 में हैनीमैन ने उल्लेख किया है कि रोगी को एक समय में स्वाभाविक और एकल औषधि ही दी जानी चाहिए, बहुलित नहीं। कारण यह हैं कि

(क) होम्योपैथिक दवाओं का प्रमाणन एकल औषधि के आधार पर किया जाता है और उसी आधार पर ही सम्पूर्ण 'मैटीरिया मैडिका' का निर्माण हुआ है।

(ख) किसी रोगी विशेष की हालत के अनुसार एकल औषधि ही सर्वार्धिक सादृश्य हो सकती है।

(ग) एक से अधिक औषधियाँ देने पर चिकित्सक कभी नहीं जान पाएगा कि कौन सी औषधि कारगर थी? आगामी उपचार में क्या रास्ता अख्तियार किया जाए, यह भी अस्पष्ट रहेगा।

(घ) यदि कई दवाओं का मिश्रण दिया जाए तो उसका प्रभाव सहक्रियात्मक होगा और कहा नहीं जा सकेगा कि वह इन दवाओं के एकल प्रभावों के योगफल के बराबर था। औषधियों के बीच अनचाही अंतःक्रिया विपरीत प्रभाव भी उत्पन्न कर सकती है। कई औषधियों को मिलाकर बनाई गई खुराक दरअसल एक नई औषधि ही मानी जाएगी जिसे सम्भावित प्रभावों के आकलन के लिए नयी प्रमाणन की प्रक्रिया से गुज़रना होगा।

न्यूनतम् का सिद्धांत

एक रोगी के लिए औषधि की उपयुक्तता सही औषधि के चयन के अलावा उसकी उचित खुराक निर्धारण पर भी निर्भर करती है। इसलिए रोगी को न्यूनतम मात्रा में खुराक तजवीज की जाती है। इसके निम्न लाभ हैं:

(क) अनचाहे दुष्परिणामों से बचा जा सकेगा। (ख) विशिष्ट और सुव्यक्त रोग लक्षणों को पहचाना जा सकेगा। (ग) औषधि की न्यूनतम मात्राओं से शरीर को कोई हानि नहीं होगी और व्यसन का खतरा भी नहीं रहेगा। (घ) स्वास्थ्य आदर्श संतुलन की माग करता है। थोड़ी सी चूक इसे विचलित कर सकती है।

प्रमाणन का सिद्धांत

होम्योपैथी में हम उन्हीं औषधिओं की तजवीज करते हैं जिनके औषधीय गुण औषधि–प्रमाणन से ज्ञात किए गए हों। औषधि–प्रमाणन सुव्यवस्थित अनुसंधान का कार्य है जिसमें हम औषधि की रोगकारक क्षमता का आकलन रोगी की लैंगिक, आयुगत और शरीरगत भिन्नताओं के आधार पर करते हैं। यह प्रमाणन मनुष्य पर ही होना उचित होगा क्योंकिः

(क) पशुओं में आत्मनिष्ठ और मानसिक लक्षण प्रकट नहीं होते। (ख) मनुष्य और पशु पर उसी औषधि के प्रभाव भिन्न होंगे।

चिरकालिक व्याधि का सिद्धांत

होम्योपैथिक चिकित्सा के आरंभ काल में हैनीमैन महोदय ने महसूस किया कि सही होम्योपैथिक दवा दिए जाने के बावजूद, कुछ रोगी कुछ कुछ अंतराल उपरांत वही रोग लक्षण पुनः प्रकट करने लगते हैं। तकरीबन 12 वर्षों की गहरी तहकोकात के उपरांत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चिरकालीन व्याधियाँ कुछ आधारभूत चिरकालिक विषैले तत्वों के कारण होती हैं। ये हैंः सोरा, सिफलिस और सायकोसिस। सोरा विष असंख्य रोगों का बुनियादी कारण है, लगभग सभी रोगों का जनक। कुछ ही रोग हैं जिनकी तह में अन्य दो विष हैं। अतः रोग का सही उपचार इन विषों के निदान के बिना संभव नहीं।

जीवनीशक्ति का सिद्धांत

जीवों में जीवनीशक्ति के अस्तित्व और संचालन को होम्योपैथी में अत्यंत महत्वपूर्ण समझा गया है। मनुष्य देह, मन और आत्मा के संयोग से बना एक त्रियेक प्राणी है। यही आत्मा जीवन की नानाविध अभिव्यक्तियों के लिए जिम्मेदार है जिसे हैनीमैन 'जावनीशक्ति' कहते हैं (ऑर्गेनन ऑफ़ मेडीसिनः सूत्र 10)। उनके अनुसार जीवनीशक्ति विहीन प्राणी निष्क्रिय, संवेदनहींन और अपरिरक्षित होता है। जीवनीशक्ति ही अपने अमूर्त प्राणतत्व से जोवों को अनुप्राणित करती है।

स्वस्थ मनुष्य में जीवनीशक्ति ही जीव के सामान्य कार्यकलापों और संवेदनों को प्रतिपादित करती है। लेकिन जब जीवनीशक्ति रोग के प्रभाव में अव्यवस्थित हो जाती है, तो यह असामान्य संवेदनों और क्रियाकलापों को पोसने लगती है जो समग्रता में स्थूल देह में असामान्य लक्षणों के रुप में प्रकट होते हैं जिन्हें हम रोग कहते हैं। यदि वाकई उपचार करना है और स्वास्थ्य लाभ पहुँचाना है, तो जीवनीशक्ति को जागृत होने देने की प्रतीक्ष करनी चाहिए। जीवनीशक्ति के अत्याधिक क्षीण या निःशेषित हो जाने पर ओषधि कोई मदद नहीं कर सकती।

औषधि–शक्तिकरण का सिद्धांत

होम्योपैथिक औषधि – निर्माण में शक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रयोग में लाए जाने वाले अपरिष्कृत पदार्थों के प्रच्छन्न औषधीय गुण जागृत होकर अविश्वसनीय सीमा तक विकसित हो जाते हैं। स्टअर्ट क्लोज़ के शब्दों में कहें तो, ''होम्योपैथिक शक्तिकरण एक ऐसी गणितीय – यांत्रिक प्रक्रिया है जिसके ज़रिए मापक्रम के अनुसार अपरिष्कृत, निष्क्रिय और विषैले पदार्थ विलेयता, क्रियात्मक आत्मसात्करण और चिकित्सकीय क्रियाशीलता की उस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं जहाँ वे निरापद होकर रोग निवारक होम्योपैथिक औषधि के रुप में प्रयोग किए जाने की क्षमता हासिल कर लेते हैं।''

औषधियों के शक्तिकरण के लिए सामान्यतः दो विधियाँ अपनायी जाती हैं[2]:

सम्पेषण – अविलेय पदार्थों के संदर्भ में झकझोरना – घुलनशील पदार्थों के संदर्भ में होम्योपैथी में शक्तिकरण का उपयोग निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है:

(क) औषधीय पदार्थों का उस सीमा तक न्यूनीकृत करना जिससे उसके अवांछित पार्श्वप्रभावों से बचा जा सके।

(ख) होम्योपैथी विश्वास करती है कि गतिशीलता जीवनीशक्ति की प्रकृति है और वह रोग द्वारा प्रभावित होती है और उसका निदान प्रयोज्य औषध की गतिशील ऊर्जा द्वारा किया जा सकता है न की औषध की मात्रा द्वारा।

(ग) इस प्रक्रिया से अत्यधिक विषाक्त और घातक पदार्थ न सिर्फ़ हानिरहित बनाए जा सकते हैं बल्कि उन्हें उपयोगी औषधियों में भी रुपांतरित किया जा सकता है।

(घ) पदार्थ अपनी अपरिष्कृत दशा में औषध रुप से निश्क्रिय होते हैं, उन्हें रोगोपचार के लिए क्रियाशील व प्रभावी बनाया जा सकता है।

(ङ) जो औषधियाँ अपनी स्वाभाविक अवस्था में कमोबेश क्रियाशील हैं, उनकी क्षमता में वृद्धि कर उनके क्रियाक्षेत्र को और भी व्यापक बनाया जा सकता है।

(च) शक्तिकृत औषधियों की क्रियाशीलता गहन, दीर्घकालीन और व्यापक होती है।

अपने आविर्भाव से पूर्व प्रचलित चिकित्सा पद्धति (एलोपैथी, यह नामकरण हैनीमैन ने ही किया) को दकियानूस, अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक और निर्दयी ठहराते हुए जब हॅनीमॅन ने चिकित्सा की कहीं अधिक स्वाभाविक, वैज्ञानिक, मानवीय और भौतिक होम्योपैथिक चिकित्सा का सूत्रपात्र किया, तब उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि होम्योपैथी को इस कदर विरोध और तिरस्कार का सामना करना पड़ेगा। दरअसल यह प्रणाली अन्य प्रणालियों से एकदम भिन्न और अनूठी थी। उसके द्वारा प्रतिपादित सादृश्यता के सिद्धांत पर आधारित एकल, न्यूनतम, अत्यधिक तनुकृत और शक्तिकृत औषधियों के प्रयोग प्रचलित मान्यताओं से एकदम अलग थे मगर प्रभावी रोगोपचार का दावा करते थे।

होम्योपैथिक चिकित्सा की वैज्ञानिकता :

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अधिकांशतः रोगों की उत्पत्ति का कारण रोगाणुओं और बाह्य कारकों को मानता है, इसलिए उसकी उपचार प्रणाली विभिन्न औषधियों द्वारा रोगाणुओं और बाह्य कारकों के उन्मूलन पर आधारित है। अनुभव में आता है कि रोग का निदान कुछ समय के लिए हो जाता है और रोगी को भी तात्कालिक राहत मिल जाती है परन्तु कालांतर में वह रोग पुनः उत्पन्न हो जाता है, पहले से कहीं अधिक तीव्रता लिए हुए अथवा किसी अन्य व्याधि के रुप में। अर्थात् रोग समूल नष्ट नहीं होता। उपचार में दी जाने वाली औषधि सांध्रता के सिद्धांत पर कार्य करती है; जैसे जैसे औषधि की सांध्रता (मात्रा) बढ़ती है, उपचार की क्षमता बढ़ती जाती है।

ऐलोपैथिक औषधियों का प्रभाव खुराक की मात्रा पर निर्भर करता है, जैसे जैसे खुराक में औषधि की मात्रा बढती जाती है उसका चिकित्सकीय प्रभाव भी उसी अनुपात में बढ़ता जाता है। इसके विपरीत होम्योपैथिक औषधियाँ खुराक की मात्रा से स्वतंत्र ज्यावक्रीय ;पदनेवपकंसद्ध प्रभाव उत्पन्न करती हैं। अर्थात् 200 पोटेंसी की दवा का प्रभाव किसी रोग विशेष में अधिक हो सकता है जबकि उसमें मात्रा कम है, और 30 पोटेंसी की खुराक 200 पोटेंसी की तुलना में अधिक मात्रा रखते हुए भी कम असरकारक हो सकती है; संभव है कि 6 पोटेंसी की दवा बावजूद इसके कि उसमें दवा की मात्रा सर्वाधिक है, प्रभावहीन हो। इस तरह खुराक की मात्रा के समानुपातिक प्रभाव नहीं होता। प्रतीत होता है कि जैसे एक ही दवा की विभिन्न खुराकें न होकर ये पोटेंसियाँ अपने आप में विभिन्न दवायें हों। बहुत संभव है कि होम्योपैथिक दवा की विभिन्न पोटेंसियाँ रोगी के दैहिक क्रिया विज्ञान में किसी अपापचयी परिपथ के विभिन्न चरणों को प्रभावित करने का माद्दा रखती हो। इस तरह यह कदाचित ही संभव हो पायेगा कि उस परिपथ के विभिन्न चरणों में एक साथ आनुवांशिक प्रतिरोध उत्पन्न हों और होम्योपैथिक औषधि अप्रभावी हो जाए। अधिकांशतः ऐलोपैथिक दवायें उस परिपथ के एक स्थल विशेष पर पभावशील होने की विशेषज्ञता के चलते कालक्रम में निष्प्रभावी हो जाने के जोखिम से अभिशप्त हैं क्योंकि एकल स्थल पर आनुवांशिक प्रतिरोध की अवहेलना कर पाना उनके बूते में नहीं।[3] कुछेक भारतीय विज्ञानी भी होम्योपैथिक औषधि की क्रियाविधि के मूल में बहुस्थलीय प्रत्यय के विचार से सहमत हैं।[4]

होम्योपैथी का प्रभावक्षेत्र केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं, अपितु अन्य जगत भी उसके दायरे में आते हैं। कोलिस्को (1959 ई.) ने गेहूँ सहित विभिन्न बीजों के अंकुरण पर एंटीमनी टॉक्साइड, आयरन सल्फ़ेट और कॉपर लवणों के विविध तनुकृत विलियनों के प्रभाव के अध्ययन में पाया कि बीजांकुरण और पादप वृद्धि निम्न तनुकृत घोलों द्वारा प्रवर्तित होती है, उच्च तनुकृत घोलों के प्रभाव में मंद पड़ जाती है और उच्चतर तनुकृत घोलों द्वारा पुनः प्रवर्तित होती है।[5] गेहूँ की पादप वृद्धि पर सिल्वर नाइट्रेट की विभिन्न पोटेंसियों के प्रभाव के संदर्भ में यही बात पेलीकन और अंगर (1971 ई .)

ने भी दर्ज की है।[6] होम्योपैथिक औषधियों के ज्यावक्रीय प्रभाव विभिन्न सूक्ष्मजीवों, पादपों और पशु पक्षियों में भी उल्लिखित हैं।[7]

होम्योपैथिक औषधियों की इस प्रारुपिक क्रियाविधि के रहस्य का आधार क्या है? कदाचित औषधि निर्माण में प्रयुक्त विधि में ही यह भेद निहित हो। होम्योपैथिक औषधि निर्माण की विधि कुछ इस तरह हैः जिस पदार्थ से (उसका स्रोत कोई भी हो सकता है – जैविक, वानस्पतिक, आदि) औषधिया निर्मित की जानी हैं उसे अमूमन 90 प्रतिशत एथिल अल्कोहोल में निष्कर्षित किया जाता है जिसे मूलार्क कहते हैं और क्यू पोटेंसी से चिह्नित करते हैं। औषधि की 1 पोटेंसी अर्जित करने के लिए मूलार्क के एक भाग को एथिल अल्कोहोल ;90ः द्ध के 99 भागों के साथ मिलाया जाता है और काँच से बनी शीशी को दस बार प्रचंड वेग से झटका जाता है। पोटेंसी 2 की औषधि निर्मित करने के लिए पोटेंसी 1 की औषधि के एक भाग को पुनः एथिल अल्कोहोल ;90ः द्ध के 99 भागों के साथ मिलाया और उसी तीव्रता से उतनी ही बार झटका जाता है। इसी तरह औषधि की सभी पोटेंसियों का निर्माण किया जाता है।

होम्योपैथी में औषधि निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न सांध्रताएँ न केवल तनुकरण के माध्यम से अर्जित की जाती हैं वरन् उन्हें प्रभविष्णु भी बनाया जाता है। तनुकरण औषधि की मात्रा प्रभावित करता है, प्रभविष्णुता उसके रुप–विधान को।

इन औषधियों में औषधि की मात्रा उसकी पोटेंसी की व्युत्क्रमानुपातिक होती है। उदाहरण के लिए, 6 पोटेंसी की औषधि में औषधि सांध्रता 10^{-6} और 12 का पोटेंसी में 10^{-24} होती है। होम्योपैथी रोगोपचार में सामान्यतः 30 व 200 पोटेंसी की दवाओं को प्रयुक्त किया जाता है। सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पोटेंसी के इस स्तर पर औषधि अपने मूल अणुओं से विच्छिन्न हो चुकी है।

प्रत्येक रुपाकार सुनिश्चित चिकित्सकीय गुण से लबरेज़ है। यहाँ हम होम्योपैथिक औषधि के अनूठेपन और उसकी विरोधाभासी असाधारण प्रकृति से रुबरु होते हैंः बारहवीं पोटेंसी (10^{-24} तनुक्रम) के परे होम्योपैथिक औषधि में औषधीय पदार्थ अनुपस्थित हो जाता है क्योंकि पदार्थ का अस्तित्व ऐवोगेड्रो अंक ($6\text{-}03 \times 10^{23}$ परमाणु/अणु) के द्वारा निर्धारित सैद्धांतिक सीमा को पार नहीं कर सकता। रोगोपचार में सामान्यतः होम्योपैथिक औषधियों की जो पोटेंसियाँ निर्धारित की जाती हैं (30, 200, आदि) वहाँ औषधीय पदार्थ लुप्त हो जाता है। यह हतप्रभ करने वाली बात है कि औषधियाँ फिर भी काम करती हैं।

होम्योपैथिक औषधियाँ यह कौतुक कैसे रचती हैं? पदार्थ की अनुपस्थिति के बावजूद अनेक दुःसाध्य और लाइलाज रोगों का इलाज वे कैसे संभव बनाती हैं? यही वह कमज़ोर कड़ी है जहाँ से होम्योपैथी स्वयं ही अपना प्रतिपक्ष गढ़ती है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के पैरोकार और समृची वैज्ञानिक

परम्परा होम्योपैथी के दावों की इसी कारण खिल्ली उड़ाती है, तीखी आलोचना करती है और उसे छद्म औषध या नीम हकीमी का तमगा पहनाया जाता है।[8]

अपनी वैज्ञानिकता प्रमाणित न कर पाने से कुंठित, अपने आविर्भाव से ही अनवरत विरोध झेल रही होम्योपैथी को अंततः कुछ समय से राहत मिल रही है। स्थिति अब उतनी विषादपूर्ण नहीं। आणुविक रसायन और परिष्कृत उपकरणों के सतत परिवर्धन की प्रक्रिया का शुक्रिया जिसके फलस्वरुप होम्योपैथिक औषधियों की भौतिक प्रकृति बूझने की अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकी। प्रायोगिक उपलब्धियों के आधार पर कई विश्वसनीय तर्क प्रस्तुत किए जा रहे हैं ताकि होम्योपैथिक औषधियों में अंतर्निहित विरोधाभासों के रहस्य पर से पर्दा उठाया जा सके। इनमें से कुछ दलीलें विज्ञानियों का ध्यान आकर्षित कर रही हैं। उनमें से एक परिकल्पना यह है कि शक्तिकरण को प्रक्रिया के दौरान औषधि के गुण विलायक (जल/अल्कोहोल) में सम्प्रेषित हो जाते हैं; विलायक अणु अभिनव विन्यास अर्जित करते हैं और बारहवीं पोटेंसी के आगे जहाँ औषधीय पदार्थ विलुप्त हो जाते हैं, वे अभिविन्यास सतत अस्तित्व में रहे आते हैं, उनका परिमाण और संरुप शक्तिकरण की सीमा निर्धारित करती है। इस तरह विलायक के अणु स्वयं ही औषधीय गुण अर्जित कर लेते हैं।[9] और अनेक विज्ञानी इस अभिमत से सहमत दिखते हैं। स्मिथ और बोरिकी (1974 ई.) ने न्यूक्लीयर मैग्नेटिक रेज़ोनेंस तकनीक के प्रयोगों से प्रदर्शित किया कि सल्फ़र के हाइड्रॉक्सिल ग्रुप के स्पेक्ट्रा में खालिस अल्कोहोल की तुलना में महत्वपूर्ण अंतर पैदा हो जाते हैं।[10] बाइरोन एवम् विन्ह (1976 ई.) के लेज़र रमन स्पैक्ट्रोमेट्रिक अनुसंधान दर्शाते हैं कि पोटेसियम बाइक्रोमेट की उच्चतर पोटेंसियों में अल्कोहोल का स्पक्ट्रम समाप्त हो जाता है, और पोटेसियम बाइक्रोमेट का बचा रहता है।[11] अर्थात अल्कोहोल के अणु स्वयं ही पोटेसियम बाइक्रोमेट की अस्मिता में ढल जाते हैं। लेकिन होम्योपैथिक चिकित्साशास्त्र को पुरजोर ताकत तब प्राप्त हुई जब 1988 ई. में नेचर जर्नल में प्रकाशित दो बार के नोबेल पुरस्कार विजेता बेनविनस्ते के एक शोधपत्र ने होम्योपैथी की वैज्ञानिकता की पुष्टि की। उन्होंने बताया कि इम्यूनोग्लोब्युलिन ई ऐंटीबॉडी की होम्योपैथिक तनुताएँ औषधीय मूल तत्व के अस्तित्व के ही पूर्णतया समाप्त हो जाने के बावजूद किस कदर बैसोफ़िल कोशिकाओं से हिस्टेमीन के रिसाव को प्रेरित कर सकती है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के पैरोकारों के बीच खलबली मच गई, उन्होंने बेनविनस्ते के प्रयोगों में खामियों की तरफ़ इशारा किया और उनके द्वारा अपनाई गई प्रयोग पद्धति पर ही सवाल खड़े कर दिए। हो भी क्यों न, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अपने आर्थिक हितों पर संकट मंडराने लगा था। कोई अचम्भा नहीं, कि ब्रिटिश मेडीकल संस्था ने तमाम शालीनता ताक पर रखकर ऐसी ढिठाई प्रदर्शित की कि होम्योपैथी को ''जादू टोने'' का दर्जा दे दिया गया। लेकिन ऐलोपैथी सांसत में है। बेनविनस्ते के प्रयोगों को कम से कम चार प्रयोगशालाओं ने दोहराया है और विवादास्पद नतीजों पर पहुँची हैं। ये प्रयोग लेन्सेट पत्रिका में 1989

ई. में प्रकाशित हुए। बहरहाल ह्यूमन इम्यूनोडेफ़िशिऐंसी वायरस के खोजकर्ता मोंटेनियर के अनुसंधानों ने एक नए ही वैज्ञानिक आंदोलन को अंजाम दिया है जिसमें भौतिकशास्त्र, जीवविज्ञान और चिकित्साशास्त्र सभी चौराहे पर खड़े दिग्भ्रमित हैं – जाऐं तो जाऐं कहाँ? उनके शोध का दावा है कि विभिन्न रोगजनकों के डीएनए की उच्च पोटेंसियों से निकली विद्युत – चुम्बकीय तरंगे जल में संरचनात्मक परिवर्तन का कारण बनती हैं जिनकी अस्मिताएं उच्च पोटेंसियों में भी यथावत बरकरार रहती है। उनके अनुनादित विद्युत चुम्बकीय संकेतों को मापा जा सकता है। होम्योपैथी के आधुनिक पैरोकार उसकी क्रियाविधि की रीत को जल या अल्कोहोल में नहीं बल्कि विभिन्न औषध तत्वों के संस्पर्श से उपजे उनके संरचनात्मक रुपांतरण में ढूँढ़ते हैं। टॅक्नोलॉजी के भारतीय संस्थानों के शोध उच्चस्तरीय पोटेंसी में नैनोपार्टिकिल्स को प्रमाणित करते प्रतीत होते हैं।[12] ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी, इंडक्टिवली कपल्ड प्लाज्मा–एटोमिक एमिशन स्पेक्ट्रोस्कोपी द्वारा किए गए रासायनिक विश्लेषण और इलेक्ट्रॉन विवर्तन के शोध उच्च पोटेंसियों में पदार्थ की भौतिक उपस्थिति का सत्यापन करते हैं। चार होम्योपैथिक औषधियाँ उनके अनुसंधान का आधार बनीं – ज़िंकम मैट, औरम मैट, स्टेनम मैट व क्यूप्रम मैट। होम्योपैथी की वैज्ञानिकता के पक्ष में ये ठोस प्रमाण हैं। अब तो कई विज्ञानी होम्योपैथी का अनुमोदन करते हैं और ''जल–संस्मरण'' के सिद्धांत को भरपूर समर्थन मिल रहा है।[13] दरअसल झगड़े की जड़ यह है कि जल–संस्मरण का सिद्धांत भौतिकी और रसायनिकी के मौलिक सिद्धांतों के ही आड़े आता है और आग्रह करता है कि होम्योपैथी के मुलभूत सिद्धांतों की रोशनी में भौतिकी और रसायनिकी की स्थापनाओं की समीक्षा की जाए।[14]

होम्योपैथिक दवायें इसके अलावा एक और दृष्टिकोण से भी सुविधाजनक हैं कि वे कोशा झिल्लियों को आसानी से पार कर सकती हैं क्योंकि वे जल या अल्कोहोल की निर्मिती हैं जबकि मुख्यधारा के पदार्थ जो निश्चित ही बड़ी खुराकों में दिए जाते हैं, उनके अणुओं के लिए कोशा झिल्लियों को पार कर पाना एक चुनौती है।[15]

होम्योपैथी की औषधियाँ हर मायने में सुरक्षित हैं। उनके निर्माण की प्रक्रिया में धुआँ और ज़हर उगलने वाले बड़े कारखानों और उनसे निपटने के जटिल उपक्रमों की दरकार नहीं। पर्यावरण की वे मित्र हैं। वे पार्श्वप्रभाव मुक्त हैं। सस्ती हैं। चिकित्सा की जटिलता से दूर हैं। प्रकाश, ताप और गंध से दूर रखें तो 20 वर्षों तक खराब नहीं होतीं।

क्या वाकई जल स्मृतियों को सहेज कर रख सकता है? इस विषय पर होम्योपैथी जर्नल के जुलाई 2007 अंक में कई शोधपत्र प्रकाशित हुए जिनको लेकर वैज्ञानिकों के बीच विवाद मचा हुआ है। इस मत के विरोध में पमुख साक्ष्य जल अणुओं के बीच हाइड्रोजन बंधनों की अल्पकालिकता को लेकर है। जल के साथ जब अल्कोहोल मिलाया जाता है (होम्योपैथिक औषधियाँ एक्वस अल्कोहोल में ही

निर्मित की जाती हैं) तो ये हाइड्रोजन बंध विशुद्ध जल के मुकाबले कुछ ज़्यादा समय के लिए रहते है। एक्वस अल्कोहोल में सिलिका का भी कुछ अंश विद्यमान हो सकता है क्योंकि औषधियाँ काँच की वायल में निर्मित की जाती हैं। संभवतः इसीलिए काँच की वायल का प्रयोग किया जाता हो। घुली हुई सिलिका पर मूल औषधि के निशान उसकी अनुपस्थिति के बावजूद बने रह सकते हैं। जल कितना भी शुद्ध हो, उसमें कुछ न कुछ अशुद्धियाँ अवश्य रहती हैं। कुछ गैसें भी निश्चित पायी जाती हैं। इन संदूषकों का प्रभाव भी पड़ता है। बहरहाल, जल–स्मृति के मत को लेकर विवादास्पद स्थिति बनी हुई है।

इसी प्रसंग में यह जानना और भी दिलचस्प होगा कि विज्ञानियों द्वारा अवैज्ञानिक ठहराए जाने के बावजूद बेनविनिस्ते अपनी उपलब्धियों को खारिज नहीं करते बल्कि पुरजोर तरीके से अपने विचार को और आगे ले जाते हैं। वे कहते हैं कि जैविक रुप से सक्रिय अणुओं के प्रभाव साउन्ड कार्ड पर अंकीकृत किए जा सकते हैं और इंटरनेट के ज़रिए उन्हें पृथ्वी पर कहीं भी सम्प्रेषित किया जा सकता है। यदि बेनवनिस्ते के दावे सही साबित होते हैं, जोकि हाल फ़िलहाल असंभव जान पड़ता है, तो वे एक क्रांति ला देंगे। विभिन्न प्रयोगशालाओं में उनकी बताई विधियों के अनुसार उनकी उपलब्धियों को जाँचा परखा जाना चाहिए। अभी तो ये बहुत दूर की कौड़ी लगती हैं, हालांकि होम्योचिकित्सा को उससे बड़ा ढाढ़स बंधा है।

औषध मानकीकरण :

औषध मानकीकरण से किसी औषधि की गुणवत्ता, सुरक्षा और प्रभावोत्पादकता सुनिष्चित होती है। इसमें एसे अनके मापदंड शमिल होते है जो होम्योपैथिक औषधि की गुणवत्ता और भेषजीय एकरूपता को परिभाषित करते है। होम्योपैथिक औषधियों को भेषज अभिज्ञान और भौतिक–रसायन मूल्यांकन के लिए केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (होम्यो.) नोएडा और औषध मानकीकरण इकाई (होम्यो.) हैदराबाद में ये शोध जारी रखे गये। प्रतिवेदनाधीन वर्ष के दौरान निम्नलिखित औषधियों पर मानकीकरण आरम्भ किया गया है।[16]

क्र.	भेषज अभिज्ञानिक अध्ययकृत (वानस्पतिक नाम)	प्रचलित नाम	भौतिक–रसायनिक अध्ययन (वानस्पतिक नाम)	प्रचलित नाम
1	एमी विसनागा	दांत पकड़ पौधा, खेला	एमी विसनागा	दांत पकड़ पौधा, खेला
2	अमूरा राहिटुका	रोहिटुका पेड़, हरीन–हरा	अमूरा राहिटुका	रोहिटुका पेड़, हरीन–हरा

3	अटिस्टा रेडिक्स	बन–नींबू जड़	अटिस्टा रेडिक्स	बन–नींबू जड़
4	ब्लुमिया लेसिरा	कोकुरन्दा	ब्लुमिया लेसिरा	कोकुरन्दा
5	बक्सस सेंपवायरन्स	हिमालय बोक्सवुड	बक्सस सेंपवायरन्स	हिमालय बोक्सवुड
6	कोलियस फोरसकोली	गारमर, गान्दिरा	कोलियस फोरसकोली	गारमर, गान्दिरा
7	कोरचोरस केपसुलिरस	सफेद जूट	कोरचोरस केपसुलिरस	सफेद जूट
8	गेसिपम हरबेसियम	कपास,रूई का पौधा	गेसिपम हरबसियम	कपास, रूई का पौधा
9	पिमेन्टा ओफिसिनेलिस	आलस्पाइस पेड़	पिमेन्टा ओफिसिनेलिस	आलस्पाइस पेड़

सारांश

अंततोगत्वा हम एक ही बात को ज़ोर देकर कहना चाहेंगे जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और वह यह है कि होम्योपैथिक औषधियाँ रोगोपचार में सहायक हैं। होम्योपैथिक साहित्य ऐसे प्रकरणों और उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस तथ्य पर शक करने की गुंजाइश नहीं। यदि उनकी क्रियाविधि को वैज्ञानिक कसौटियों पर परखा नहीं जा सका है, इससे यह कतई साबित नहीं होता कि रोगोपचार में उनका प्रयोग अवैज्ञानिक है, इसलिए वर्जनीय है और उसे नीम हकीमी का दर्जा दे दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत आवश्यक्ता इस बात की है कि हम अपनी वैज्ञानिक कसौटियों को ही और उन्नत और परिमार्जित करें और यदि आवश्यक जान पड़े तो भौतिकी और रसायनिकी के मूलभूत सिद्धांतों का ही पुनरावलोकन करें। होम्योपैथी इसका सुअवसर देती है। इसे रद्द न कर चुनौती की जरह स्वीकार किया जाना चाहिए। स्वयं विज्ञान के लिए यह अभिनंदनीय है।

संदर्भ ग्रंथ

- Bhatia, M., Describing the fundamental scientific principles of homeopathy. ABC of Homoeopathy, (2009).
- http://www.homeoint.org/site/deepak/principles_of_homeopathy.htm
- Owens, R.G., Organic sulfur compounds, in D.C. Torgeson (Ed.), Fungicides an Advanced Treatise, Oxford, (1969), 147-301.
- Bee, S. and Atri, D.C., Control of Aflatoxin G1 production in groundnuts by homoeopathic drugs. *International Journal of Pharma and Bio Sciences.* (2012), 3(4B): 896-901.

- Kolisko, L., Physiologischer und physikalischer Nachweis der Wirksamkeit kleinster Entitaten, (1959), 1923-1959.
- Pelican, W. and Unger, G., The Activity of Potentized Substances: Experiments on Plants Growth and Statistical Evaluation. *British Homoeopathic Journal,* (1971), 60: 233-266.
- Stephenson, J., A review of investigations into the action of substances in dilutions greater than 1×10−24 (microdilutions). *Journal of the American Institute of Homeopathy,* (1955), 48, 327–335.
- Lee J, Thompson E., Postironium - the vastness of the universe knocks me off my feet. *The Homeopath.,* (2007), 26 (2): 49-54.
- Kumar, A. and Jussal, R., A hypothesis on the nature of homoeopathic potencies. *The Hahn. Glean.* XLVIII., (1981) 3: 133-141.
- Smith, R.B. Jr. and Boericke, G.W., Modern instrumentation for the evaluation of homeopathic drug structure. *J Am Inst Homeopath,.* (1966), 59:263–280.
- Boiron, J. and Vinh, C.L.D., Contribution to the study of the physical structure of homoeopathic dilutions by Raman Laser Effect. *The Hahn. Glean.,* (1976), 43(10):455-467.
- Chikramane, P.S. *et al.*, Extreme homoeopathic dilutions retain starting material: A nanoparticulative prospective. *Homoeopathy.* (2010), 99:231-242.
- Maddox, J., Randi, J. and Stewart, W., High dilutions experiments a delusion. *Nature.*, (1988), 334:287-291.
- Grimes, D.R., Proposed mechanisms for homoeopathy are physically impossible. *Fact.,* (2012), 17(3):149.
- Sharma, R.R., Scientific bases of Homoeopathy, Xenobiology, Ultramicroxenopathy, Unified Therapeutics and more. *Hahnemannian Glean,.* (1982), 49:51-61.
- http://ccrlindia.org/drug_standardisation.html, 2013, pp.-3.